it our website www.ejaypee.com, for detailed information on ayurveda books, visit our website www.ejaypee.com, for detailed information on ayurveda books, visit our website www.ejaypee.com

वृक्षायुर्वेद



आचार्य वैद्य ताराचन्द शर्मा
वैद्य मनोज कुमार शर्मा
वैद्य अभिजीत ताराचन्द शर्मा

JAYPEE

वृक्षायुर्वेद संग्रह

विषयानुक्रमणिका

प्राक्कथन

विषय प्रवेश

1. आयुर्वेदानुसार द्रव्यों का वर्गीकरण **2**

क. कार्यकारण भेद से 2

ख. चेतनाचेतन भेद से 2

ग. भौतिक संघठन भेद से 3

घ. योनि भेद से 4

च. प्रयोग भेद से 5

छ. रस भेद से 6

ज. विपाक भेद से 7

झ. वीर्य भेद से 7

ञ. दोष कर्म भेद से 8

ट. सांस्थानिक कर्म भेद से 10

ठ. निरन्तर प्रयोग किये जाने वाले आहार द्रव्य 10

2. द्रव्यों का रचनात्मक वर्णन चरक, सुश्रुतोक्त वर्ग भेद से **11**

3. आधुनिक रचनात्मक वर्गीकरण

क. उद्भव भेद से 12

ख. आयु भेद से 13

ग. आकृति भेद से 13

घ. कुल भेद से 14

4. चरक, सुश्रुत रचनात्मक वर्गीकरण **15**

5. उद्भिज्जाङ्ग प्रत्यंग विज्ञान **19**

1. योनिभेद से औषध द्रव्य वर्गीकरण 19
2. उद्भिज्ज निरुक्ति 19
3. साशन अनसन वर्ग 19
4. स्थावर जंगम 20
5. अन्तश्चेतन संज्ञा 20
6. उद्भिज्ज मुख्य श्रेणियां 20
7. उपश्रेणिया, आवृत एवं नग्न बीज 21
8. आवृत, एकदल, द्विदल 21
9. निवास भेद 22
10. आयु भेद 22
11. आकृति भेद 22

6. उद्भिज्ज अंग वर्णन 23

7. मूल वर्णन, मूल के भेद एवं कार्य 24

1. मूल के भेद 25
2. मूल रूपान्तरण 28

8. काण्ड स्वरूप 29

प्रकार एवं कार्य 29-30
काण्ड के रूपान्तर 32

9. पत्र वर्णन 33

पर्ण भेद, स्वरूप 34
पर्ण विभाग 34
पत्राकृति 36
पत्र रूपान्तरण 38

10. पुष्प वर्णन 39

पुष्पोद्भव, पुष्प विन्यास 40
पुष्प अवयव 40
पुष्प कोष 41
सन्तानोत्पादक अवयव 42
पंकेशर स्त्रीकेशर 42-43

पुष्प जाति भेद 43
11. फल एवं बीज वर्णन 45
फल एकाकी एवं सामुहिक फलों के प्रकार 46
12. प्राचीन मत से उद्‌भिजों के भेद 47
13. आधुनिक द्रव्य वर्गीकरण 52
14. उद्‌भिज सृष्टि तालिका 54
14. सुश्रुतोक्त वर्णन वर्गो के कार्य 54
उपवन विनोद (वृक्षायुर्वेद) 60
1. तरु महिमा 60
2. निवास स्थान पर लगाने वाले शुभाशुभ वृक्ष 63
3. भूमि निरुपण 65
4. अहित भूमि 65
5. प्रशस्त भूमि 65
6. आनूप भूमि 66
7. साधारण भूमि 66
8. पादप विवक्षा (वानस्पतिक वर्गीकरण) 66
9. बीज बोने की विधि 67
10. वृक्ष लगाने एवं रोपण की विधि 69
11. वृक्ष निषेचन विधि 71
12. वनस्पति सुरक्षा नियम 72
13. उपवन प्रक्रिया 73
14. कूप के लिए भूमि परीक्षा 75
15. भूमि में जल स्रोत शिरा 75
16. विभिन्न वृक्षों के निवास से जल शिरा ज्ञान 76
17. मरु प्रदेश की जल शिरा 80
18. वनस्पति पोषण विधि विभिन्न योग 82
19. कुणप जल निर्माण विधि (विशेष पोषक द्रव) 87
20. तरु चिकित्सा 87
21. दोषज रोग एवं चिकित्सा 88

22. दोषज प्रकृति स्वरूप 88
23. स्वास्थ्य वर्धक योग 89
24. विचित्र करण 91
वृक्ष प्रकृति वर्णन प्रयोग
वृक्ष वृद्धि से अन्नादि निष्पत्ति विज्ञान 96
वृक्षायुर्वेदाध्याय बृहत संहिता 98
1. बगीचे में लगाने वाले वृक्ष 98
2. पूर्व में लगाने वाले वृक्ष 98
3. कलमी वृक्ष लगाने की विधि 99
4. वृक्ष रोपण काल 99
5. वृक्ष रोपण के नियम 99
6. वृक्ष रोपण विधि 100
7. वृक्ष सींचने की विधि 100
8. जल प्राय देश में होने वाले वृक्ष 100
9. वृक्ष लगाने का क्रम 100
10. अच्छी तरह फल नहीं देने वाले वृक्ष 101
11. वृक्षों से रोगोत्पत्ति के कारण 101
12. वृक्षों की चिकित्सा 101
13. फल नाश की चिकित्सा 101
14. वृक्षों में वृद्धि चिकित्सा 102
15. बीज बोने की विधि 102
16. इमली का वृक्ष लगाने की विधि 103
17. कपित्थ बीज लगाने की विधि 103
18. अन्य वृक्ष लगाने के प्रकार 104
कुसुमलताध्याय (बृ० संहिता)
19. (वृक्षों के फलने फूलने से धान्यों की उत्पत्ति) 105
20. वृक्षों के फलों से पशु, रत्न एवं वर्षा के संकेत 105
21. सर्वत्र लगाये जाने वाले भद्र वृक्ष 107
22. निषिद्ध वृक्ष एवं शुभ वृक्ष 108

23. वृक्ष रोपण का फल (अग्नि पुराण) 111
24. वराह पुराण में वृक्ष वर्णन 113
25. अछेद्य वृक्ष 113
26. वृक्ष छेदन के दोष वात चक्राध्याय 114
वर्षा एवं वातज गति वर्णन बृ० संहिता 116
1. विभिन्न दिशा की वायु का फल 116
2. वर्षा होने के विविध योग 119
3. वृ० संहिता दकार्गला वर्णन 128
4. भूमि जल प्रयोजन 128
5. दिशाओं में स्थित शिरा वर्णन 128
6. वेतस आदि वृक्षों से जल शिरा ज्ञान 129
7. जामुन वृक्ष से शिराज्ञान 129
8. गूलर वृक्ष से जल शिरा ज्ञान 130
9. अर्जुन वृक्ष जल शिराज्ञान 130
10. सिन्दुवार से जल शिराज्ञान 130
11. बेरवृक्ष से जल शिराज्ञान 130
12. ढाक एवं बेर संयोग से शिरा ज्ञान 131
13. जल शिरा ज्ञान 131
14. बेर एवं गूलर युक्त स्थान से जल शिरा ज्ञान 131
15. फल्गु वृक्ष से शिरा ज्ञान 131
16. कमेले के वृक्ष से जल शिरा ज्ञान 132
17. कुमुदानाम शिरा ज्ञान 132
18. बहेड़े से जल शिरा ज्ञान 132
19. सप्तपर्ण वृक्ष से जल शिरा ज्ञान 133
20. वृक्ष के नीचे मेढक से जल ज्ञान 134
21. करंज वृक्ष से जल ज्ञान 134
22. महुए के वृक्ष से जल शिरा ज्ञान 134
23. ताल मखाने से जल शिरा ज्ञान 135
24. कदम्ब वृक्ष से जल शिरा ज्ञान 135
25. ताल या नारियल से जल शिरा ज्ञान 135

26. कपित्थ से जल शिरा ज्ञान 135
27. अश्मन्तक वृक्ष से तेजस शिरा ज्ञान 136
28. हरिद्र वृक्ष से तेजस जल शिरा ज्ञान 136
29. जल रहित देश में जल चिन्ह 136
30. जल रहित एवं जल सहित देश ज्ञान 136
31. बल्मीक युक्त, तिलक वृक्ष से जल शिरा ज्ञान 137
32. तृण रहित एवं तृण युक्त स्थान से धन ज्ञान 137
33. कंटकी एवं कण्टक रहित वृक्षों से धन ज्ञान 137
34. भूमि ताडन से जल ज्ञान 137
35. वृक्ष शाखा से जल ज्ञान 137
36. फल एवं पुष्पों से जल शिरा ज्ञान 138
37. कटेरी से जल शिरा ज्ञान 138
38. खजूर से जल शिरा ज्ञान 138
39. कर्णिकार एवं ढाक से जल शिरा ज्ञान 138
40. वाष्प एवं धूम से जल शिरा ज्ञान 138
41. धान्यों से जल ज्ञान 139
42. मरु प्रदेश में जल शिरा ज्ञान 139
43. पीलूवृक्ष से जल शिरा ज्ञान 139
44. करीर वृक्ष से जल शिरा ज्ञान 140
45. रोहित वृक्ष से जल शिरा ज्ञान 140
46. अर्जुन के वृक्ष से जल शिरा ज्ञान 140
47. धत्तूर के जल शिरा ज्ञान 140
48. बेर, लाल करंज संयोग से जल शिरा ज्ञान 141
49. पीलू एवं बेर संयोग से जल शिरा ज्ञान 141
50. अर्जुन, करीर तथा अर्जुन एवं बेल संयोग से जल शिरा ज्ञान 141
51. बल्मीक पर दूब एवं कुशा से जल शिरा ज्ञान 142
52. कदम्ब, दूर्वा युक्त बल्मीक से जल ज्ञान 142
53. तीन वल्मीक मध्य रोहित से जल ज्ञान 142
54. शमी वृक्ष से जल शिरा ज्ञान 142

55. पांच वल्मीक से जन शिरा ज्ञान 142
56. श्वेत कण्टक युक्त शमी से जल शिरा ज्ञान 143
57. जल ज्ञान में तारतम्य 143
58. वल्मीक पर जामुन वृक्ष से जल शिरा ज्ञान 144
59. विकार युक्त भूमि से जल शिरा ज्ञान 144
60. भूमि लक्षण से जल शिरा ज्ञान 144
61. स्निग्ध वृक्षो से जल शिरा ज्ञान 145
62. भूमि दबने से जल शिरा ज्ञान 145
63. गरम ठण्डी भूमि से जल शिरा ज्ञान 145
64. बल्मीक की उंचाई से जल शिरा ज्ञान 145
65. बट, पीपल, गूलर युक्त स्थान से जल शिरा ज्ञान 145
66. आग्नेय कोण स्थित कूप फल 146
67. मनु द्वारा बताये वृक्षो से जल ज्ञान वर्णन 146
68. मूंज (शरकण्डा) वाली भूमि से जल शिरा ज्ञान 147
69. भूमि के वर्ण से जल शिरा ज्ञान 147
70. शाक आदि के लक्षण से जल शिरा ज्ञान 147
71. लाल काले आदि पत्थर से जल ज्ञान 148
72. कबूतर एवं विचित्र रंग के पथर से जल ज्ञान 148
73. शुभ शिलाओं से जल ज्ञान 148
74. शिला विदारण विधि 149
75. शस्त्र तीक्ष्ण करने के उपाय 150
76. बाबड़ी लक्षण 150
77. बाबड़ी किनारे लगाने जाने वाले वृक्ष 151
78. जलनिर्गमन (निकलने) का मार्ग 151
79. कूप में डालने वाले द्रव्य 150
80. कूप खोदने के नक्षत्र 151

प्रकीण प्रकरण

1. द्रव्य गुण का सामान्य ऐतिहासिक विवरण 152
2. व्यावहारिक उद्भिज शास्त्र 155

3. वृक्षों के लिए भूमि 156
4. बाग के मंगल वृक्ष 156
5. काण्ड से रोपण किये जाने वाले वृक्ष 157
5. रोपण विधि 157
7. स्थान परिवर्तन से लगाये जाने वाले वृक्ष 157
8. जल सींचने का समय 157
9. वृक्ष रोपण विधि 157
10. शीघ्र फल फूल लगाने की विधि 158
11. वृक्ष रोपण नक्षत्र 158
12. वृक्ष की लता बनाने की विधि 158
13. संक्षिप्त वानस्पतिक रचना क्रिया विज्ञान 159
14. देश विभाग 159
15. आनूप, जांगल, साधारण वनस्पति संक्षिप्त वर्गीकरण 160
16. देश विज्ञान 161
17. औषध द्रव्यों की खेती 164
18. भूमि विचार 165
19. क्षेत्र वर्णन 168
20. वनौषध उत्पादन सुरक्षा एवं रोग निवारण 170
21. औषध उत्पादन योग्य भूमि 171
22. वृक्ष विकृति विज्ञान 173
वनस्पति संग्रह संरक्षण 173
1. औषध संग्रह विधि 173
2. संग्रह योग्य-अयोग्य भूमि 173
3. स्थान विशेष से औषध गुण धर्म 176
4. नवीन प्राचीन औषध ग्रहण विचार 177
5. द्रव्यों का हीन वीर्य होना 179
6. औषध द्रव्यों का संरक्षण 179
7. काल वर्णन 180
8. मान परिभाषा 184

9. मागध, कलिंगमान 185-186
10. औषध परीक्षा 188
11. हिताहित द्रव्य ग्रहण विचार 189
12. विरुद्ध द्रव्य वर्णन 190
13. अभाव एवं प्रतिनिधि द्रव्य 196
14. द्रव्य संज्ञा एवं नाम विशेष 201
15. रोगानुसार शामक द्रव्य परिचय 204
16. मिश्रक द्रव्य वर्णन त्रिफला आदि 205
17. पेड़ों की बोनजाई तकनीक 208
18. वनस्पति नाम कुल वर्णन (लगभग 200 द्रव्य) 209



में मुख्य काण्ड के समग्र पत्र कांटों में रूपान्तरित होते हैं। **उभयोद्भव**- ये सख्त, तीक्ष्णाग्र, पत्रोद्भव कांटों से छोटे और प्रायः टेढ़े होते हैं। ये काण्ड या पत्रादि पर अनियमित रूप से निकलते हैं तो बहिर्जात होते हैं। इनको बगल से दबाने से ये आसानी से अलग हो जाते हैं। इनको न तो काण्ड के और न तो पत्र के रूपान्तर कहा जा सकता है, किन्तु इन्हें काण्डादि के बहिरुद्भव कह सकते हैं।

तन्तुभूत काण्ड :- ये पतले तार या सूत की तरह होते हैं, इनमें पत्तियां नहीं होती। ये तार की तरह लिपटे हुए और स्पर्शग्राही होते हैं, जिससे किसी सहारे को स्पर्श करते ही उसे लपेटकर पौधे को उस पर चढ़ने में सहायता करते है जैसे रक्त कूष्माण्ड (काशीफल), अंगूर आदि सूत्रारोहिणी लताओं में।

काण्ड के भौमिक रूपान्तर :-

यहां रूपान्तरित भौमिक काण्ड के भेदों का वर्णन किया जाता है। भौमिक काण्ड को सामान्यतः कन्द और शास्त्रीय परिभाषा में काण्डकन्द कहते हैं। काण्डकन्द चार भेद होते हैं- 1. अनियताकार कन्द, 2. गोलाकार कन्द, 3. वज्रकन्द और 4. वल्कीकन्द। **अनियताकार कन्द**-यह पुष्प मोटा और मांसल भौमिक काण्ड है जिसमें मेदे (स्टार्च) के रूप में खाद्य पदार्थ भरा रहता है। यह सामान्यत जमीन के अन्दर अनेक शाखा कन्दों में फैलकर पड़ा रहता है। इनमें ग्रन्थि, पर्व, वल्कपत्र और अक्षियां होती हैं। इससे वायवीय शाखायें जमीन के ऊपर निकलती रहती हैं और नीचे पृष्ठ से अनियमित रूप में जड़ें निकलती रहती है, जैसे अदरक और हल्दी। अयिताकार कन्द प्रायः बहुशाखी होते हैं, परन्तु कभी कभी एकशाखी भी होते हैं जैसे जंगली अरबी में। **गोलाकारकन्द**- भौमिक काण्ड या शाखा के भेद के रूप में संचित खाद्य पदार्थ के कारण फूले हुए मांसल तथा गोल अग्रभाग को गोलाकार कन्द कहते हैं। इसके पृष्ठ पर अनेक छोटे छोटे खड्ढ़े होते हैं जिनमें छोटी छोटी अक्षिणं (आंखे) होती हैं, प्रत्येक अक्षि से एक स्वतन्त्र पौधा तैयार हो सकता है। जैसे आलू, कसेरू, कमल के कन्द आदि। **वज्रकन्द**- यह कन्द में बड़ा, मांसल-फूलता रहता है। इस पर आंखे और आधारभाग में अनियमित मूल भी होते हैं जो जैसे सूरण। **वल्कीकन्द**-इसमें भोज्य पदार्थों का संचय वल्कपत्रों में रहता है और वास्तविक काण्ड बहुत छोटा रहता है, जो मोटे तथा मांसल वल्कपत्रों से पूर्णतः ढका रहता है जैसे प्याज। वल्कीकन्द को पत्रमयकन्द भी कहते हैं।

पर्ण-पत्ता

'पर्ण' शब्द की निरुक्ति :-

'पर्ण' शब्द **'पर्ण' हरितभावे,** 'पृ' **पालनपूरणयोः,** अथवा **'पृण' प्रीणने** इन धातुओं से **'पर्णयतीति पर्ण**=जा स्वयं हरा होकर उद्भिज्ज में हरापन लाता है, **'पितर्तीति पर्ण**=जो उद्भिज्ज का पालन और पोषण करता है, अथवा पृणतीति पर्ण=जो उद्भिज्ज का प्रीणन-तर्पण करता है, वह पर्ण कहलाता है, इन तीनों में से किसी एक व्युत्पत्ति से बनता है। इन व्युत्पत्तियों से स्वयं हरा होना, उद्भिज्ज में हरापल जाना और खाद्य सामग्री उत्पन्न करके उद्भिज्ज का पालन, पोषण और तर्पण करना ये पर्ण के गुण-कर्म व्यक्त होते हैं। उद्भिज्ज के सब अंगों में पत्ते में ये गुण-कर्म प्रधानतया वर्तमान होने से उसको पर्ण नाम दिय गया है। उद्भिज्ज के सब अंगों में पत्तियां उत्पन्न होकर शीघ्र गिर जाती हैं, इसलिये उनको पत्र भी कहते हैं=पततीति पत्रम्। आधुनिक उद्भिज्जवेत्ताओं ने 'काण्ड या शाखा से निकला हुआ पार्श्विक प्रवर्धन जिसके पत्रकोण में अक्षि उत्पन्न होती है उसको पत्र कहना चाहिये, यह पत्र का सामान्य लक्षण लिखा है।

JAYPEE BROTHERS

पत्र के कार्य :-

पत्र के सामान्य कार्य :- 1. प्रकाश की सहायता से खाद्य पदार्थों का निर्माण करना, 2. विशुद्ध वायु लेना और अशुद्ध वायु को बाहर निकालना (श्वसन), तथा 3. मूल के द्वारा शोषित और आवश्यकता से अधिक जल का भाप के रूप में बाहर निकालना (जल त्याग) ये तीन हैं। पत्तियों के विशेष कार्य और उनके सम्पादनार्थ पत्तियों के रूपान्तरित होने का वर्णन इस प्रकरण के अन्त में किया जायगा।

पर्ण के भेद :-

आधुनिक उद्भिज्जवेत्ताओं ने पर्ण के 1. बीज पत्र, 2. वास्तवपर्ण, 3. वल्कपत्र, 4. उपपत्र (पुंड्खपन्न) 5. पुष्पच्छद और 6. सबीजक पत्र ये छः भेद माने हैं।

बीजपत्र-बीज के अन्दर एक, दो अथवा कहीं दो से अधिक दल (विभाग-दाल) होते हैं, जो बीजोद्भेद के बाद पौधे की सर्व प्रथम निकली हुई पत्तियों के रूप में प्रायः बाहर आते हैं जो उनको बीजपत्र कहते हैं।

वास्तवपर्ण -उद्भिज्जों की सामान्य हरी पत्तियो को वास्तवपर्ण या प्रामाणिक पत्र (सच्ची पत्तियां) कहते हैं। इनके लिये केवल पर्ण या पत्र शब्द का प्रयोग किया जाता है।

वल्कपत्र-मगर या मछली की पीठ पर तो त्वचा होती है उसको वल्क कहते हैं। जैसे वल्क में एक के ऊपर एक कई परत होते हैं वैसे इस पत्र में एक के ऊपर एक कई परत होते हैं, इसलिये इसको वल्कपत्र कहते हैं। ये प्रायः छोटे, शुष्क और भूरे रंग के होते हैं। ये भौमिक काण्ड (कन्द) या शाखा पर अक्षियों के पार्श्व से निकलते हैं। इनमें वृन्त नहीं होता। ये स्वतः काण्ड से ठीक लगे रहते हैं। आंख की रक्षा करना इनका मुख्य कार्य है।

उपपत्र- पर्णवृन्त के मूल से दोनों ओर एक एक (मिलकर दो) छोटे छोटे पत्र निकलते हैं, उन्हें उपपत्र कहते हैं। ये पत्र वृन्त के दोनों ओर निकलते हैं और देखने में बाण के पुङ्ख के जैसे मालूम होते हैं इसलिये इन्हें पुङ्खपत्र तथा ये पर्णकलिका को ढांककर उसकी रक्षा करते हैं अतः इन्हें पर्णच्छद भी कहते हैं। कई उद्भिज्जों में उपपत्र बहुत स्पष्ट मालूम होते हैं और कइयों में ये होते ही नहीं।

पुष्पच्छद- पुष्पवृन्त के तलभाग से या पुष्प की पंखड़ियों के नीचे प्रायः हरे रंग के पत्र निकलते हैं, ये कलिकावस्था में पुष्प को आच्छादित करके उसकी रक्षा करते हैं, अतः इन्हें पुष्पच्छद कहते हैं।

सबीजकपत्र-इन पत्तियों में अलैङ्गिकी सन्तानोत्पत्ति के निमित्त बीजक होते हैं। जैसे हंसराज आदि अपुष्प उद्भिज्जों में।

पर्ण के विभाग :-

पर्ण के मुख्य तीन भाग होते हैं :-1. पर्णतल, 2. पर्णवृन्त और 3. फलक।

पर्णतल- पर्ण, काण्ड या शाखा की ग्रन्थि पर जिस भाग से चिपका रहता है उसको पर्णतल कहते हैं। पर्ण प्रायः वृन्त के अधोभाग से काण्ड पर चिपका हुआ होता है, परन्तु कई पर्ण वृन्तरहित होते हैं (जैसे सत्यनाशी का पर्ण), वे पत्र (फलक) के मूलभाग से काण्ड पर ठीक सटे हुए होते हैं, उन्हें काण्डसंसक्त

JAYPEE BROTHERS

पत्र कहते हैं। पर्णतल चिपटा और काण्ड पर फैला हुआ होता है। दूर्वा, मक्का, प्याज आदि बहुत एकदल उद्भिज्जों में और धनिया, जीरा, सौंफ आदि कुछ द्विदल उद्भिज्जों में पर्णतल या पर्णवृन्त फैलकर कोषाकार हो जाता है और काण्ड को चारों ओर पूरा या कुछ दूर तक घेर लेता है, उसे परिवेष्टक कहते हैं।

पर्णवृन्त- पर्णतल और फलक के बीच के भाग को पर्णवृन्त (पान की डंडी, डंडी या डंठल) कहते हैं। जो पर्ण वृन्तवाला हो उसको सवृन्त और जो वृन्तरहित हो उस को अवृन्त कहते हैं। पर्णवृन्त प्रायः फलक के मूलभाग से जुड़ा रहता है, परन्तु किसी किसी पत्र में मध्य में अधरपृष्ठ पर जुड़ा हुआ होता है। जैसे एरण्ड, कमल आदि के पत्र में। उस को पत्रमध्यलग्न कहते हैं। पर्णवृन्त साधारणतः गोल, नीचे से संकरा और ऊपर से कुछ चौड़ा (अर्धबेलनाकार) होता है। जलवासी पौधों का पर्णवृन्त प्रायः फूला हुआ होता है। उसके अन्दर वायुपूर्ण छिद्र होते हैं, जिस के कारण वे पौधे जल के ऊपर तैरा करते हैं (जैसे जलकुंभी का पर्ण), उस को स्फीत-पर्णवृन्त कहते हैं।

फलक- पर्णवृन्त के ऊपर लगे हुए पर्ण के पतले और चौड़े भाग को फलक कहते हैं। स्व. वा. वैद्य गंगाधर शास्त्री जोशी ने वृन्त समेत फलक को पर्ण और वृन्तरहित फलक को पत्र नाम दिया है। यह पर्ण का सब से अधिक महत्वपूर्ण भाग है। खाद्य पदार्थों का निर्माण, श्वसन और जलत्याग ये पर्ण के मुख्य कार्य इसी के द्वारा होते हैं। यह रंग में प्रायः हरा होता है। फलक में मध्य रेखा के दोनों बाजू दो पार्श्व होते हैं। दोनों पार्श्व मिलकर पूर्ण फलक बनता है। पत्र का जो आकार और माप लिखा रहता है वह पूर्ण फलक का समझना चाहिये। उस में प्रायः वृन्त का समावेश नहीं किया जाता।

पत्रपृष्ठ- पत्र में ऊपर-नीचे दो पृष्ट होते हैं। आकाश और सूर्य की किरण की ओर के पृष्ठ को अपरपृष्ठ तथा जमीन और काण्ड की ओर के पृष्ठ को अधरपृष्ठ कहते हैं। पत्रपृष्ठ चमकीला और चिकना हो तो उस को मसृण, मुलायम, रोयेंदार हो तो रोमश, कड़े रोयेंदार (खुरदार) हो तो खर या कर्कश और कांटेदार हो तो उसे कण्टकी कहते हैं।

फलकमूल- जहां फलक वृन्त से जुड़ा हुआ होता है और जहां से किनारें निकलती हैं उस भाग को फलकमूल या पत्रमूल कहते हैं।

पत्राग्र- पत्र में जहां दोनों ओर के किनारें मिलते हैं तथा मध्यसिरा समाप्त होती हैं उस भाग को पत्राग्र कहते हैं। पत्र का अग्रभाग यदि नोकीला हो (जैसे आम में), तो उस को तीक्ष्णाग्र, यदि लम्बा, क्रमशः पतला और आगे की ओर बहुत निकला हुआ हो (जैसे पीपल में), तो उसको लम्बाग्र, यदि गुठ्ठल हो (जैसे बड़ में) तो उस को कुण्ठिताग्र, यदि अग्रभाग मध्य सिरा पर भीतर की ओर दबा हुआ हो (जैसे कचनार में), तो उस को नताग्र और यदि देखने में ऐसा मालूम हो कि पत्र का अग्रभाग काट दिया है तो उस को छिन्नाग्र कहते हैं।

पत्रधारा- पत्र में दाहिनी और बांई दोनों बाजू जो किनार-कोर होती है, उस को पत्रधारा कहते हैं। जब पत्रधारा कहीं से भी खण्डित (कटी) हुई न हो (जैसे वटपत्र में), तो उसको अखण्ड कहते हैं। जब पत्र की धार अखण्ड परन्तु लहर की तरह नीचे ऊपर उठी हुई हो (जैसे आम के पत्र में), तो उसे लहरदार (तरङ्गसदृश) कहते हैं। जब पत्र की धार आरे (करौत) के समान तीक्ष्ण दांतों वाली हो (जैसे गुलाब के पत्त

JAYPEE BROTHERS

में) तो उस को तीक्ष्णदन्तुरा कहते हैं। जब पत्र की धार गुठ्ठल नोकवाले दांतों वाली हो (जैसे ब्राह्मी की पत्ती में), तो उस को कुण्ठितदन्तुरा कहते हैं।

पत्रसिरा- पत्र में चारों ओर जो रसवाहिनियां फैली होती हैं, उन को पत्रसिरा कहते है। इन सिराओं के कारण ही पत्र में अकडाई और उस का चपटा आकार कायम रहता है। पत्र के मध्य में पत्रमूल से पत्राग्रतक गई हुई मध्यसिरा को माढि या मध्यसिरा कहते हैं। पत्र में विविध प्रकार की जो सिराओं की रचनायें होती हैं उन को सिरारचना या सिराक्रम कहते हैं। सिरारचना मुख्य दो प्रकार की होती है :- 1. जालिनी और 2. समानान्तर। **जालिनी**- इस रचना में मध्यसिरा से या बड़ी बड़ी मुख्य सिराओं से अनेक शाखा सिरायें निकलकर और अनियमित रूप में विभक्त होकर परस्पर मिल जाती हैं और जालसदृश रचना बना लेती हैं। इसके पक्षकार और करतालाकार दो भेद होते हैं। **पक्षाकार**-इस रचना में मुख्य सिरा एक होती है, जिस से शाखायें और उससे प्रशाखायें निकलकर जाल की तरफ फैली रहती है। जैसे आम, बड़ आदि में। **करतलाकार**- इस रचना में पत्रमूल से कई बड़ी-बड़ी सिरायें निकलकर ऊपर की ओर जाती हैं। इसमें भी दो भेद होते हैं। प्रथम में पर्णवृन्ताग्र से कई सिरायें निकलती हैं, परन्तु ऊपर जाती हुई इस प्रकार घूमकर जाती हैं कि पत्राग्र पर सभी फिर मिल जाती हैं, जैसे बेर आदि के पत्र में। दूसरे में पर्ण वृन्ताग्र से कई बड़ी बड़ी सिरायें निकलकर ऊपर इस प्रकार फैली रहती हैं कि ऊपर की ओर क्रमशः एक दूसरे से दूर होती जाती हैं, जैसे एरण्ड, पपीता आदि के पत्र में। दूसरे में पर्ण वृन्ताग्र से कई बड़ी-बड़ी सिरायें निकलकर ऊपर इस प्रकार फैली रहती है। कि ऊपर की ओर क्रमशः एक दूसरे से दूर होती जाती हैं, जैसे एरण्ड, पपीता आदि के पत्र में। **समानान्तर सिरा रचना**-इस क्रम में मुख्य सिरायें और उनसे निकली हुई शाखायें भी समानान्तर क्रम से फैली रहती हैं। जैसे अनेक एकदल उद्भिज्जों के पत्र में। इसके दो भेद होते हैं:- 1. एकपर्शुक और 2. बहुपर्शुक। **एकपर्शुक**-इस में माढि से दोनों ओर शाखा-सिरायें निकलकर एक दूसरे के समानान्तर फैलकर किनारों की तरफ या अग्र की ओर जाती हैं, जैसे केला, अदरक, हल्दी आदि में। **बहुपर्शुक**- इस में पत्र मूल से कई बड़ी सिरायें निकलकर पत्र में एक दूसरे के समानान्तर फैली रहती हैं। इसके भी दो भेद होते हैं। प्रथम में एक कद या लम्बाई की कई बड़ी सिरायें पत्राग्र पर जाकर मिल जाती है, जैसे मक्का, बांस आदि में। दूसरे में पत्रमूल से सिरायें निकलकर पत्रधारा की ओर बढ़ती हुई क्रमशः एक दूसरे से दूर होती जाती है जैसे ताड़ में।

पत्राकृति :-

पत्र के आकार अनेक प्रकार के होते हैं। जब पत्र लम्बा, पतला तथा नोकीला सूई के आकार का हो (जैसे चीड़ में), तो उसको सूचिकाकार कहते हैं। जो पत्र हृदय के आकार का हो (जैसे गिलोय में), उसको हृदयाकार कहते हैं। जो वृक्क (गुर्दे) के आकार का हो (जैसे ब्राह्मी में), उसको वृक्काकार कहते हैं। जो मूल और अग्र में संकरा तथा मध्य में चौड़ा हो (जैसे जामुन का पत्र), उस को लम्ब गोल कहते हैं। जो पत्र गोल हो (जैसे कमल का पत्र), उस को वर्तुल कहते हैं। जो पत्र भाले की तरह मध्य में अधिक चौड़ा और दोनों ओर क्रमशः पतला हो गया हो (जैसे कनेरका पत्र), उस को भल्लाकार कहते हैं। जो पत्र लम्बा परन्तु कम चौड़ा हो और चौड़ाई मूल से अग्र तक एकसी हो (जैसे घास और मक्की का पत्र), उस को रेखाकार कहते हैं। जो पत्र ऊपर के भाग में चौड़ा और मूल में संकरा अणीदार ही (जैसे थूहरका पत्र), उस को दर्व्याकर कहते हैं। जो पत्र मूल में सब से अधिक चौड़ा और गोल हो तथा अग्र की ओर क्रमशः पतला होकर नोकीला हो गया हो (जैसे बड़ का पत्र), उस को लट्वाकार कहते हैं। जो पत्र अग्रभाग पर सब से अधिक चौड़ा हो

JAYPEE BROTHERS

और नीचे की ओर क्रमशः संकरा होकर नोकीला हो गया हो (जैसे देशी बादाम और कटहल का पत्र), उसको विपरीत लट्वाकार कहते हैं।

पर्ण के भेद :-

पर्ण के दो भेद होते हैं :- 1. एकाकी और सदल। जिस पर्ण में उस की किनार (पत्रधारा) मध्यसिरा तक खण्डित न हुई हो (जैसे तुलसी, बड़ आदि में) उस को एकाकी (अकला-सादा) पर्ण कहते हैं और जिस पर्ण में पत्र (फलक) मध्यसिरा तक कई स्वतन्त्र दलों में विभक्त हो गया हो (जैसे अमलतास, कीकर, बेल आदि में), उस को सदल (अनेक दलों में विभक्त) या संयुक्तदल पर्ण कहते हैं। सदल पर्ण में जो पत्रसदृश विभाग होते हैं उनको दल कहते हैं। एकाकी पर्ण की किनार भी विभक्त होती हैं (जैसे एरण्ड आदि के पत्र में), परन्तु वह मध्यसिरा तक विभक्त नहीं होती किन्तु कुछ भाग तक ही विभक्त रहती है। एकाकी पत्र के ये विभाग उस की किनार कई स्थानों में कुछ दबकर जैसे हथेली से अंगुलियां निकली हुई हो ऐसे दिखते हैं, उनको पत्राङ्गुल कहते हैं। एरण्ड का पञ्चाङ्गुल नाम प्रसिद्ध है। एकाकी और सदल पर्ण में अन्य भी विशेषतायें होती है जैसे- 1. एकाकी पर्ण के पर्णकोण में अक्षि होती है परन्तु सदल पर्ण के किसी भी दल के पत्रकोण में अक्षि नहीं होती, 2. एकाकी पर्ण के वृन्तमूलपर प्रायः पुङ्खपत्र (उपपत्र) होते हैं परन्तु सदल पर्ण के किसी दल के वृन्तमूल पर उपपत्र नहीं होते।

सदल पर्ण और शाखा में भेद :-

1. शाखा के अग्र भाग पर अक्षि (शुंग) होती है, परन्तु सदल पर्ण में मध्यदण्ड के अग्रपर अक्षि कभी नहीं होती। 2. सदल पर्ण के दल शाखा की तरह गोपुच्छाकार क्रम से नहीं निकलते। 3. किसी शाखा के कोण में अक्षि नहीं होती किन्तु वह स्वयं किसी पत्ती के पत्रकोण से निकलती है, परन्तु सदल पत्ती किसी पत्ती के पत्र कोण से नहीं निकलती। पक्षाकार सदलपर्ण एक साधारण शाखा की तरह मालूम होते है इसलिये प्रारम्भ में सदल पत्ती में शाखा का भ्रम होने की संभावना है, परन्तु ऊपर लिखे हुए लक्षणों से आसानी से दोनों को अलग कर सकते हैं।

सदल पर्ण के भेद :-

सदल पर्ण के मुख्य दो भेद हैं :- 1. पक्षाकार और 2. करतलाकार। जैसे पंख में मध्यदण्ड से दोनों ओर बाल निकले हुए होते हैं वैसे जिस पर्ण में मध्यसिरा (मध्यदण्ड) से दोनों ओर दल निकले हों उसको पक्षाकार कहते हैं। पक्षाकार पर्ण के तीन उपभेद होते हैं- 1. समदल 2. विषमदल और 3. उपपक्षयुक्त। जिस पर्ण में मध्यदण्ड से दोनों और समसंख्या में दल विभक्त हों (जैसे अमलतास, कसौंदी आदि में) उसको समदल कहते हैं। जिस पर्ण में मध्यदण्ड के दोनों बाजू समसंख्या में दल विभक्त हों और मध्यदण्ड के अग्र पर एक दल अधिक हो (जैसे गुलाब, कोयल आदि में) उसको विषमदल कहते हैं। जिस पर्ण में मध्यदण्ड से कई छोटी छोटी शाखायें (उपपक्ष) निकली हों और इन शाखाओं पर भी पक्ष की तरह दोनों बाजू दल हों (जैसे गुलम्होर, कीकर, लाजवंती आदि में) तो उसको उपपक्षयुक्त कहते हैं। जब सदल पर्ण के वृन्ताग्र से दल इस प्रकार निकले हों जैसे करतल (हथेली) से अंगुलियां निकलती हैं और उसका आकार करतल जैसा मालूम होता हो तो उसका करतलाकार पर्ण कहते हैं। करतालकार पर्ण में जब वृन्त के अग्र से एक दल निकला हो (जैसे नींबू, संतरा आदि में) तब उसको एकदल, जब दो दल निकले हों (जैसे इंगुदी में) तक उसको द्विदल, जब

JAYPEE BROTHERS

तीन दल निकले हों (जैसे बेल, वरुण, चाङ्गेरी आदि में) तब उसको त्रिदल, जब चार दल निकले हों (जैसे सुनिषण्णक, चौपतिया में) तब उसको चतुर्दल और जब पांच या पांच से अधिक दल निकले हों (जैसे गोरखइमली, हुरहुर आदि में) तो उसको बहुदल कहते हैं।

पर्णक्रम :-

पत्तियों को उचित मात्रा में सूर्य का प्रकाश प्राप्त होने के लिए काण्ड या शाखा पर उनके निकालने का जो विशेष प्रकार का क्रम होता है उसको पर्णक्रम या पर्णविन्यास कहते हैं। पर्णक्रम तीन प्रकार का होता है- 1. अभिमुख, 2. वर्तुल और 3. पेचदार। जब काण्ड या शाखा पर प्रत्येक ग्रन्थि के आमने सामने दो पत्तियां निकली हों तब उसको अभिमुख कहते हैं। जब प्रत्येक ग्रन्थि से चारों ओर दो से अधिक पत्तियां निकली हों (जैसे कनेर, सप्तपर्ण आदि में), तो उसको वर्तुल कहते हैं। जब प्रत्येक ग्रन्थि से एक एक पत्ती अन्तर देकर (बल खाकर) निकले और उसका दृश्य पेच जैसा मालूम हो तो उसको पेचदार या एकान्तर पर्णक्रम कहते हैं, जैसे जपा, बड़, आसोपालव आदि में।

मधुग्रन्थियां :-

पत्ते में शहद जैसे मधुर पदार्थ से भरी हुई ग्रन्थियां होती हैं, उन्हें मधुग्रन्थि कहते हैं। कसौंदी के काण्ड पर पत्रकोण में नीले काले रंग की मधुग्रंथियां होती हैं। अर्जुन के पत्र के अधरपृष्ठ पर मध्यसिरा के दोनों ओर दो बड़ी मधुग्रन्थियां होती हैं। कई अन्य वनस्पतियों के पत्तो पर भी ऐसी ग्रन्थियां होती हैं।

तैल ग्रन्थियां :-

नींबू का पत्ता लेकर सूर्यप्रकाश के सामने रखें तो उसमें अनेक पारदर्शक बिन्दुसदृश ग्रन्थियां दिखाई देंगी। इन ग्रन्थियों में तैल भरा होता है। प्रायः सुगन्धित पत्तियों में तैलग्रन्थियां होती है।

पत्र का संगठन :-

जो पत्ती मोटी और रसाल हो (जैसे पथरचूर का पत्र) उसको मांसल, जो कुछ कड़ी हो (जैसे बड़ और आम्र का पत्र) उसको चर्मसदृश, जो कड़ी और आसानी से टूट सके ऐसी हो (जैसे हारसिंगार की पत्ती) उसको भंगुर और जो पतली और मुलायम हो (जैसे गुलाबास की पत्ती) उसको कौशेयसदृश (रेशमी वस्त्र जैसी) कहते हैं।

विशेष कार्यों के लिए पत्तियों का रूपान्तर :-

प्रामाणिक पत्तियों के खाद्य पदार्थों का निर्माण, श्वसन और जलत्याग ये तीन कार्य होते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ उद्भिज्जों में विशेष कार्यों के निमित्त उनकी पत्तियों के विशेष प्रकार के रूपान्तर होते हैं। जिन विशेष कार्यों के निमित्त पत्तियां रूपान्तरित होती है वे छः हैं- 1. अवलम्बन (सहारा), 2. शोषण, 3. आकर्षण, 4. सन्तानोत्पत्ति, 5. संचय और 6. रक्षा। इनका वर्णन क्रमशः किया जा रहा है। **सहारा**- सहारा देना या वायवीय अंगों का धारण करना यह काण्ड का मुख्य कार्य है, परन्त कई पत्तियां रूपान्तरित होकर यह कार्य करती हैं। उनके चार प्रकार होते हैं-1.धारक वृन्तमूल, 2. तन्तुभूत पत्र, 3. पत्रोद्भूत बडिश और स्फीत वृन्त। **धारकवृन्त**

JAYPEE BROTHERS

मूल-कुछ पौधों में वृन्तमूल बहुत लम्बे हो जाते हैं। ओर ऐसे अनेक वृन्तमूल इस प्रकार मिल-जुलकर अपनी वृद्धि करते हैं कि उनसे काण्डसदृश रचना बन जाती है, जैसे केला, अदरक आदि में। **तन्तुभूत पत्र**- कुछ दुर्बलकाण्ड उद्भिज्जों में पूरी पत्ती या उसका कुछ भाग तन्तु जैसा हो जाता है जो किसी सहारे को लपेटकर पौधे को उस पर चढ़ने में सहायता देता है, जैसे मटर, लाङ्गली आदि में। **पत्रोद्भूत बडिश**- कुछ आरोहिणी लताओं में पत्तियों से बडिशाकार रचनायें निकलती रहती हैं, जो उनको दूसरे आश्रय स्थान पर चढ़ने में सहायता देती है। **स्फीतवृन्त**- कई जलवासी पौधों के पर्णवृन्त फूले हुए होते हैं, इनसे ये पत्तियां पानी में तैरती रहती हैं। जैसे सिघाड़ा में। **शोषक पत्र**- पृथिवी से क्षार मिश्रित जल का शोषण करना यह जड़ों के प्रधान कार्यों में से है। परन्तु कुछ पौधों में यह कार्य करने योग्य पत्तियां भी होती है। इनके दो भेद हैं- 1. जलशोषक और 2. मांसाहारी। **जलशोषक**- जलमग्न पौधों की पत्तियां जलाशयों से क्षारमिश्रित जल का शोषण करती हैं। शुष्क भूमि में होने वाले कुछ पौधों के पत्र पर शोषक रोम होते हैं, ये रोम बरसाती पानी या ओस का शोषण कर लेते हैं। **मांसाहारी**- मांसाहारी पौधे अपनी पत्तियों की ऐसी विचित्र योजना करते हैं कि उन पर बैठे हुए कीटादि से भोज्य पदार्थ का शोषण कर लेती हैं (इनका विशेष विवरण उद्भिज्ज शास्त्र के स्वतन्त्र ग्रन्थों में देखें, विस्तारमय से यहां नहीं दिय है)। **आकर्षक पत्तियां**- पुष्प की रंगीन पंखड़ियों का मुख्य कार्य पराग-वितरण के लिए कीड़ों को आकर्षित करना है। कुछ पौधों में पुष्प बहुत छोटे होने से वे अनाकर्षक होता हैं, इसलिये उनमें रंगीन पत्तियां होती हैं, जो कीड़ों को आकर्षित करती है। **संतानोत्पादक पत्र**- कुछ पौधों की पत्तियों में छोटी अक्षियां होती है। उन पत्तियों को जमीन में लगाने से नया पौधा उत्पन्न होता है, जैसे पथरचूर में। **संग्राही पत्तियां**- ऐसी पत्तियां प्राय: मांसल और मोटी होती हैं। इनके तीन भेद होते हैं- 1. जिनमें जलसंचय के लिये विशेष प्रकार के तन्तु हों (जैसे घीकुंवार, थूहर आदि के पत्र, 2. जिसमें भोज्य पदार्थ के संचय के लिए विशेष प्रकार के तन्तु हों, (जैसे प्याज आदि में) और 3. जिनमें खाद्य पदार्थ के संचय के लिये छोटी थैलियां हो। **रक्षक पत्तियां**- कुछ पौधों में संपूर्ण पत्ती या उसका कुछ भाग पौधे की रक्षा के लिये रूपान्तर कर लेता है। रक्षक पत्तियों के तीन प्रकार है-1. कण्डकीभूत पत्र, गतिशील पत्र और कलिकावल्क। **कण्टकीभूत पत्र**-(इनका वर्णन पहले कर दिया है)। **गतिशील पत्र**- लाजवन्ती की पत्ती को हम स्पर्श करते हैं तो उसकी पत्ती के सभी दल गतिशील होकर संकुचित हो जाते हैं। **कलिकावल्क**- कुछ पौधों में विशेष प्रकार की पत्रवत् रचनाए होती हैं, जो जाड़ों में कलिका की रक्षा करती हैं, उन्हें कलिकावल्क वल्क कहते हैं। ये रचनायें संपूर्ण पत्ती, पुंखपत्र या अर्धविकसित फलकवाली पत्तियों के पत्रवृन्तों के रूपान्तर से प्राप्त होती है जैसे पीपल, कटहल, चम्पा आदि में।

पुष्प-फूल

उद्भिज्जों के धारक और पोषक अवयवों का वर्णन किया। अब सन्तानोत्पादक अवयवों का वर्णन किया जाता है। उद्भिज्जों में संतानोत्पादक अवयव दो होते हैं- 1. पुष्प और 2. फल। प्रथम पुष्प होकर पीछे उसमें फल लगते हैं, इसलिये पहले पुष्प का वर्णन किया जायगा।

'पुष्प' शब्द की निरुक्ति :-

'पुष्प' विकसने, धातु से '**पुष्प्यतीति पुष्पं**=जो विकसित होता है (खिलता है) वह पुष्प कहलाता है, इस व्युत्पत्ति से पुष्प शब्द बनता है।' उद्भिज्ज में विकसित होने वाले अवयव को पुष्प कहते हैं।

JAYPEE BROTHERS

for detailed information on ayurveda books, visit our website www.ejaypee.com, for detailed information on ayurveda books, visit our website www.ejaypee.com, for detailed information on ayurve

वृक्षायुर्वेद

पुस्तक की विशेषता

१. पुस्तक आयुर्वेद दृष्टि से द्रव्य वर्गीकरण का वर्णन
२. द्रव्यों का रचनात्मक वर्गीकरण
३. उद्भिजों के मूल, पत्र, पुष्पादि अंगो का रचनात्मक वर्णन
४. उपवन विनोद (वृक्षायुर्वेद) वर्णन
५. वृक्षायुर्वेद बृहत संहिता
६. कुसुमलताध्याय (बृ०सं०)
७. वर्षा एवं वात गति (बृ०सं०)
८. दकार्गल वर्णन (बृ०सं०) (भूमि से द्रव्य प्राप्ति)
९. द्रव्य गुण का ऐतिहासिक विवरण
१०. वानस्पति संग्रह संरक्षण, हिताहित, अभाव एवं प्रतिनिधि द्रव्य, मिश्रक योग, त्रिफला, त्रिकटु आदि पेड़ों की बोनजाई विधि वर्णन।

स्व० पं० रामदत्त जी शर्मा के सुपुत्र **आचार्य वैद्य ताराचन्द शर्मा** एम० डी० आयुर्वेद ने अपना आयुर्वेद अध्ययन वैद्य मुरारी मिश्र एवं वैद्य रामकृष्ण शर्मा जी के सानिध्य में नि० भा० आयु० विद्यापीठ से आयुर्वेदाचार्य उपाधि प्राप्त की, 1968 से महाविद्यालयों में अध्यापन कराते हुए आयुर्वेद के अनेक विषयों पर पुस्तकों का लेखन किया। 1980 में पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला से एम० डी० आयुर्वेद की उपाधि प्राप्त कर दिल्ली के मूलचन्द हॉस्पिटल में वरिष्ठ अनुसन्धान अधिकारी के पद पर आयुर्वेद विश्वकोश तैयार किया जिसका एक भाग "**पञ्चकर्म** चिकित्सा विज्ञान" चौखम्बा से प्रकाशित हो चुका है।

विगत 50 वर्ष से आप आयुर्वेद में लेखक, चिकित्सक, शोधकर्ता आदि के रूप में प्रसिद्ध है, आप के 200 से अधिक अनेक पत्र पत्रिकाओ के लेख एवं 65 के करीब पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है। सी० सी० आर० ए० एस० की पाँच पुस्तकों का आप हिन्दी अनुवाद कर चुके है। आपको अनेक मानद उपाधियों से सम्मानित किया गया है। आर० ए० वी० द्वारा आपको लाईफ टॉईम अचीवमेंट अवार्ड एवं दिल्ली सरकार द्वारा "**वरिष्ठ नागरिक सम्मान**" एवं २० फरवरी 2025 को आयुष मंत्रालय भारत सरकार द्वारा "**धन्वन्तरि पुरस्कार**" प्रदान किया गया है।

वैद्य ताराचन्द शर्मा के सुपुत्र **वैद्य मनोज कुमार शर्मा** ने चिकित्सा में प्रारम्भ से अपने पिता का सहयोग करते हुए इन्होंने सन् 1995 से फार्मेसी में कार्य आरम्भ कर दिया एवं समय के अभाव के कारण सन् 2013 में बी० ए० एम० एस० उत्तीर्ण कर पिताजी के साथ चिकित्सा कार्य में लग गये। रोहिणी एवं विभिन्न क्षेत्रों में सैकड़ों निःशुल्क चिकित्सा शिविरों में भाग लिया एवं निरन्तर शिविर लगाने के साथ पुस्तकों की पाण्डुलिपि तैयार करने में भी पूर्ण सहयोगी रहे है। आप भी नाड़ी परीक्षा में निरन्तर अग्रसर हैं। आपने अपने अनुभव से अपने पिता की पुस्तक लेखन में सहायक एवं लेखक के रूप में अनेक पुस्तकों में कार्य कर रहे हैं। त्रिफला, आयुर्वेदज्ञा जैनाचार्य चरित्रकोष, आयुर्वेद कृत्तित्व परिचय कोष, सॉल्वड प्रश्न-उत्तर पेपर फॉर बी० ए० एम० एस० प्रथम साल आदि अनेक पुस्तकों में लेखक के रूप में कार्य किया एवं भविष्य की पुस्तकों में कार्यरत है।

वैद्य मनोज कुमार शर्मा के सुपुत्र **वैद्य अभिजीत ताराचन्द शर्मा** ने बचपन से ही आयुर्वेद के विभिन्न कार्यक्रमों में अपने दादा व पिता के कारण सम्मिलित होते रहे है। 2016 में बी० ए० एम० एस० के प्रथम वर्ष से ही लेखन कार्य में अपना सहयोग देना आरम्भ कर दिया था। नव युवकों को पठन-पाठन में होने वाली समस्याओं का ध्यान करते हुए पुस्तकों का नवीनीकरण करने एवं विषय को समझने के लिए टेबल, चार्ट्स आदि का निर्माण एवं सॉल्वड प्रश्न-उत्तर पेपर का निर्माण करने का सुझाव भी दिया। अभी तक 15 से ज्यादा पुस्तकों में यह सहायक लेखक का कार्य कर चुके है एवं सॉल्वड प्रश्न-उत्तर पेपर फॉर बी० ए० एम० एस० प्रथम वर्ष दूसरा एडिशन जैसी पुस्तक में यह लेखक के रूप में अपना कार्य आरंभ कर चुके हैं।

ISBN 978-93-7202-990-1
9 789372 029901

Buy from ejaypee
JAYPEE BROTHERS